महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिक-तत्व

[डा० मनोहर शर्मा]

जैन कवि-कोविदों ने राजस्थान साहित्य की श्रीवृद्धि में अपूर्व योगदान किया है। इनमें महोपाध्याय समय-सुन्दरजी का ऊंचा स्थान है। आपकी बहुविध रचनाओं से राजस्थानी साहित्य गौरवान्वित है। आप एक साथ ही बहुत बड़े विद्वान और और उच्चकोटि के कवि थे। आपने सुदीर्घ काल तक साहित्य-साधना की और जनसाधारण में शील धर्म का प्रचार किया। मध्यकालीन भारतीय संत-साधकों में उनका व्यक्तित्व निराला ही है।

महोपाध्याय समयसुन्दरजी की साहित्य साधना की यह एक विशेषता है कि उसमें एक साथ ही शास्त्र और लोक दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। जैन मुनि स्वयं शीलधर्म का आचरण करके उससे जनसाधारण को भी लाभान्वित करने की दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहे हैं, अतः उनके साहित्य में लौकिक तत्त्वों का प्रवेश स्वाभाविक है। महाकवि समयसुन्दरजी के साहित्य में तो लोकसाहित्य का रंग भरपूर है। मध्यकालीन राजस्थानी (गुजराती) लोकसाहित्य के अध्ययन हेतु उनका साहित्य एक सुन्दर एवं उपयोगी साधन है। इस विषय में एक बड़ा ग्रन्थ लिखा जा सकता है परन्तु यहां विषय को विस्तार न देकर संक्षिप्त ज्ञातव्य ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

लोकगीतों की महिमा निराली है। इनमें एक साथ ही शब्द और स्वर दोनों का सरल सौन्दर्य समन्वित मिलता है। यह रसपूर्ण साधन जनसाधारण में किसी भी तत्व का प्रचार-प्रसार करने हेतु परमोपयोगी है। जनता अपने ही स्वरों में गाए जानेवालों ज्ञान-तत्व का सहज ही अपनाकर उसको जीवन का अंग बना लेती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को मुनिवरों ने पूर्णतया समझा और इसका अपने गीतों में प्रचुरता से प्रयोग किया। इसका मधुर फल यह हुआ कि उनकी दिव्यवाणी का लोक हृदय में प्रवेश तो हुआ ही, साथ ही लोकगीतों का अमूल्य भण्डार भी सुरक्षित हो गया। आज प्राचीन राजस्थानी लोकगीतों के अध्ययन हेतु जैन मुनियों के बनाये हुए गीत ही एक मात्र साधन स्वरूप उपलब्ध हैं। उन्होंने अपने गीतों की रचना लोक प्रचलित 'देशियों' के आधार पर की और साथ ही उस गीत की प्रथम पंक्ति का प्रारंभ में ही संकेत भी कर दिया। 'जैन गुर्जर कवियों' (भाग ३ खण्ड २) में इन देशियों की विस्तृत सूची का संकलन देखते ही बनता है।

महाकवि समयसुन्दरजी संगती शास्त्र के प्रेमी एवं ज्ञाता थे। आपने अपने गीतों को अनेक राग रागनियों के अतिरिक्त तत्कालीन लोक प्रचलित 'ढालों' (तर्जों) में भी ग्रथित किया है। कहावत-प्रसिद्ध है—'समयसुन्दर रा गीतड़ा नै राणै कुंभैरा भींतड़ा।' समयसुन्दरजी के गीतों की यह लोकप्रशस्ति कोई साधारण बात नहीं है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इस महिमा का मूल कारण उनके द्वारा लोकगीतों की स्वरलहरी को अपना कर उसके आधार पर गीत-रचना करना ही है। इस दिशा में कुछ चुने हुए उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जिनमें लोकगीतों का प्रारंभिक अंश संकेत हेतु दिया गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ चरणाली चामंड रणि चढइ, चख करि राता चोलो रे
विरती दाणव दल विचि, घाउ दीयइ घमरोलो रे,
चरणाली चामंड रणि चढइ ।

सीताराम चौपई, खण्ड २, ढाल ३)

२ वेसर सोना की घरि दे बे चतुर सोनार,
वेसर सोना की ।
वेसर पहिरी सोना की रंभे नंदकुमार,
वेसर सोना की ।

(वही, खण्ड ४, ढ़ाल १)

३ तोरा कीजई म्हांका लाल दारू पिअइजी,
पड़वइ पधारउ म्हांका लाल, लसकर लेज्यांजी,
तोरी अजब सूरति म्हांको मनड़उ रंज्यो रे
लोभी लंज्यो जी ।

(वही, खंड ५, ढाल ३)

४ सहर भलो पणि सांकड़ों रे, नगर भलो पणि दूर रे,
हठीला बयरी नाह भलो पणि नान्हड़ो रे लाल ।
आयो आयो जोवन पूर रे, हठीला बयरी
लाहो लइ हरपालका रे लाल ।

(वही, खंड ५, ढाल ४)

५ लंका लीजइगी, सुणि रावण लंका लीजइगी ।
ओ आवत लखमण कउ लसकर, ज्युं घण उमटे श्रावण ।

(वही खंड ६, ढाल २)

६ रे रंगरता करहला, मो प्रीउ रत्तउ आणि,
हुँ तो ऊपरि काढि नइ, प्राण करूं कुरबाण,
सुरंगा करहा रे, मो प्रीउ पाछउ वालि,
मजीठा करहा रे ।

(वही, खंड ७, ढाल ३)

७ सिहरां सिरहर सिवपुरी रे, गढां वडउ गिरनारि रे,
राण्यां सिरहरि रुकमिणी रे, कुंमरां नन्दकुमार रे,
कंसासुर-मारण आविनइ,
प्रल्हाद-उधारण रास रमणि घरि आज्यो,
घरि आज्यो हो रामजी, रास रमणि घरि आज्यो ।

(वही, खण्ड ७, ढाल ५)

८ सूंबरा तुं सूलताण,
बीजा हो, बीजा हो थारा सूंबरा ओलगू हो

(वही, खण्ड ८, ढाल ६)

९ अम्मां मोरी मोहि परणावि हे,
अम्मां मोरी जेसलमेरां जादवां हे,
जादव मोटा राय, जादव मोटा राय हे,
अम्मां मोरी कड़ि मोरी नइ घोड़ै चढै हे ।

(वही, खण्ड ८, ढाल ७)

१० गलियारे साजण मिल्या मारुराय,
दो नयणां दे चोट रे धण वारी लाल ।
हसिया पण बोल्या नहीं मारुराय,
काइक मन मांहि खोट खोट रे,
आज रहउ रंगमहल मइं मारुराय ।

(वही, खंड ९, ढाल २)

११ दिल्ली के दरवार मइं लख आवइ लख जाइ,
एक न आवइ नवरंगखान जाकी पधरी ढलि
ढलि जावइ वे,
नवरंग वइरागी लाल ।

(वही, खण्ड ९, ढाल ४)

यहां महाकवि समयसुन्दरजी के द्वारा अपने गीतों में प्रयुक्त केवल ग्यारह 'देशियों' के संकेत दिये गए हैं, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इन 'देशियों' के गीत विविध प्रकार के हैं। इनमें भक्तिरस के साथ ही शृंगाररस भी है और साथ ही सामाजिक जीवन की झलक भी स्पष्ट है। महाकवि ने कई जगह पर गीत के प्रचलन-स्थान की भी सूचना दी है, जैसे 'ए गीत सिंध मांहे प्रसिद्ध छइ' 'ए गीतनी ढाल जोधपुर, नागौर, मेड़ता नगरे प्रसिद्ध छइ' आदि। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं प्रयुक्त 'देशी' के गेयतत्व के सम्बन्ध में भी सूचना दी गई है, जैसे —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ 'जा जा रे बांधव तुं बड़उ'
ए गुजराती गीतनी ढाल
अथवा 'वीसरी मुन्हें वालहइ' तथा हरियानी
(सीताराम चौपई, खण्ड ४, ढाल २)

२ एहनीं ढाल नायकानी ढाल सरीखी छइ
पण आंकणी लहरकउ छइ।
(वही, खण्ड ५, ढाल ४)

३ ए गीतनी ढाल राग खंभायतो सोहलानी।
वही खण्ड ८, ढाल ७)

यहां तक महाकवि के गीतों में प्रयुक्त लोक-संगीत पर चर्चा हुई है। आगे उनके गीतों में प्रयुक्त लौकिक दोहों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जो एक निराली ही छटा प्रकट करते हैं। लोक और शास्त्र का यह समन्वय अन्य राजस्थानी कवियों में भी अनेक देखा जाता है और यह परम्परागत चीज है। नमूने के तौर पर यहां महाकवि समयसुन्दरजी का एक पूरा गीत दिया जाता है—

श्रीस्थूलिभद्र गीतम्

(राग सारंग)

प्रीतड़िया न कीजइ हो नारि परदेसियां रे,
खिण खिण दाझइ देह।
वीछड़िया वालहेसर मलवो दोहिलउ रे,
सालइ सालइ अधिक सनेह ॥प्रीत०॥
आज नइ तउ आव्या काल उठि चालवुं रे,
भमर भमंता जोइ।
साजनिया बोलावि पाछा वलतां थकां रे,
धरती भारणि होइ ॥ प्रीत० ॥
राति नइ तउ नावइ वालहा नींदड़ी रे,
दिवस न लागइ भूख।
अन्न नइ पाणी मुझ नइ नवि रुचइ रे,
दिन दिन सबलो दुख ॥ प्रीत० ॥
मन ना मनोरथ सवि मनमा रह्या रे,
कहियइ केहनइ रे साथि।
कागलिया तो लिखता भीजइ आंसूआं रे,
आवइ दोखो हाथि ॥ प्रति० ॥
नदियां तणा व्हाला रेला वालहा रे,
ओछा तणां सनेह।
बहता वहइ वालह उंतावला रे,
झटकि दिखावइ छेह ॥ प्रीत० ॥
सारसड़ी चिड़िया मोती चुगइ रे,
चुगे तो निगले कांइ।
साचा सदगुरु जो आवी मिलइ रे,
मिले तो बिछुड़इ कांइ ॥ प्रीत० ॥
इण परि स्थूलिभद्र कोशा प्रतिबूझवी रे,
पाली-पाली पूरब प्रीति सनेह।
शील सुरंगी दीधी चुनड़ी रे,
समयसुन्दर कहइ एह ॥ प्रीत० ॥

(समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, पृष्ठ ३११-३१२)

उपर्युक्त गीत की प्रायः सभी 'कड़ियों' में लोक-प्रचलित दोहों का सरस एवं सुन्दर प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है, जिनमें निम्न दोहे तो अति प्रचलित हैं—

राति न आवइ नींदड़ी, दिवस न लागइ भूख।
अन्न पाणी नवि रुचइ, दिन दिन सबलो दूख ॥ १ ॥
डूंगर केरा वाहला, ओछां केरा नेह।
बहता बहइ उतावला, झटकी दिखावइ छेह ॥ २ ॥
सारसड़ी मोती चुगै, चुगै तो निगलें काय।
साचा प्रीतम जो मिलै, मिलै तो बिछुड़ै काय ॥ ३ ॥

लोक साहित्य का दूसरा प्रमुख अंग लोककथा है। लोककथाओं के संरक्षण में जैन विद्वानों का योगदान अत्यन्त सराहनीय है। उन्होंने शीलोपदेश हेतु अनेक लोककथाओं का प्रयोग किया है और साथ ही उन्हें लिखकर भी सुरक्षित कर दिया है। उनकी टीकाओं में भी लोक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं का बालावबोध हेतु प्रयोग हुआ है। इस प्रकार बालावबोध टीकाएं लोककथाओं के अध्ययन के लिए बड़ी उपयोगी हैं। जैन कवियों ने अपने कथा-काव्यों में भी प्रचुरता के साथ लोककथाओं का आधार ग्रहण किया है। इस प्रक्रिया ने एक नया ही वातावरण बना दिया है। वहां लोककथाओं को साधारण परिवर्तन के साथ धार्मिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। पात्रों एवं स्थानों के नाम रख दिए गए हैं और उनके सुख-दुःख का कारण पूर्वजन्म के भले अथवा बुरे कर्मों को प्रगट किया गया है। जिस प्रकार बौद्ध कथा-साहित्य में लोककथाओं का धार्मिक दृष्टि से प्रयोग हुआ है, वैसा ही कुछ जैन साहित्य में भी हुआ है। परन्तु दोनों जगह प्रयोग करने की शैली में कुछ भिन्नता अथवा अपनी विशेषता है। साथ ही ध्यान रखना चाहिये कि एक ही लोककथा को आधार मान कर अनेक जैन विद्वानों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है, जो उन लोककथाओं की जनप्रियता तथा बोधपूर्णता की सूचक हैं। महाकवि समयसुन्दरजो ने भी अनेक कथा-काव्यों की रचना की है, जिनको परम्परा के अनुसार 'रास' 'चौपई' अथवा 'प्रबंध' नाम दिया गया है। यह विषय अति-विस्तृत विवेचना की अपेक्षा रखता है परन्तु यहां स्थानाभाव के कारण उनकी केवल एक रचना पर ही कुछ चर्चा की जाती है। महाकवि प्रणीत 'श्री पुण्यतर चरित्र चौपई' नामक कथाकाव्य प्रसिद्ध है, जो श्री भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'समयसुन्दर रास पंचक में प्रकाशित हो चुका है। इस काव्य की वस्तु संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है—

धर्मात्मा पुरन्दर सेठ के पुण्यश्री नामक पतिव्रता पत्नी थी, परन्तु उनके कोई पुत्र न था। अतः वे उदास रहते थे। आखिर सेठ ने पुत्र हेतु कुलदेवी की आराधना की, जिसके वरदान से उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम पुण्यसार रखा गया और उसका बड़े दुलार से पालन किया गया।

जब पुण्यसार बड़ा हुआ तो उसको पढ़ने के लिए पाठशाला में भेजा गया। उसी पाठशाला में सेठ रत्नसार की पुत्री रत्नवती भी पढ़ती थी। वह पुरुष-निंदक थी। एक दिन इन दोनों में विवाद हो गया और पुण्यसार ने रत्नवती को पत्नी के रूप में प्राप्त करने का निश्चय प्रकट कर दिया।

पुण्यसार ने घर आकर अन्न-पान छोड़ दिया और रत्नवती से विवाह करने का निश्चय सबको कह सुनाया। उसका पिता पुरन्दर सेठ नगर में बड़ी प्रतिष्ठा रखता था। वह रत्नसार के घर गया और अपने पुत्र के लिए उनकी पुत्री रत्नवती को मांग की। परन्तु रत्नवती इस सम्बन्ध के लिए एकदम नट गई। फिर भी उसके पिता ने उसे अबोध समझ कर उसकी सगाई पुण्यसार के साथ कर दी।

जब पुण्यसार कुछ और बड़ा हुआ तो वह जुआरियों की संगत में पड़ गया और एक दिन उसके पिता के यहां धरोहर रूप में पड़ा हुआ रानी का हार जुए में हार गया। फल यह हुआ कि पुण्यसार को अपना घर छोड़ना पड़ा और वह जंगल में जाकर एक बड़ के कोटर में रात बिताने के लिए बैठ गया।

रात्रि के समय उस बड़ के पेड़ पर पुण्यसार ने दो देवियों को परस्पर में बातचीत करते हुए सुना। उनके वार्तालाप से प्रगट हुआ कि वल्लभी नगर में सुन्दर सेठ ने अपनी सात पुत्रियों के विवाह की पूर्ण तैयारी कर रखी है और लम्बोदर के आदेश से उनके लिए वर पाने की प्रतीक्षा में बैठा है। यह कौतुक की वस्तु थी। अतः उसे देखने के लिए उन देवियों ने वटवृक्ष को मन्त्र प्रभाव से उड़ाया और वे वल्लभी आ पहुँचीं। कहना न होगा कि पुण्यसार भी वृक्ष के कोटर में बैठा हुआ वहीं आ पहुँचा। फिर दोनों देवियाँ नायिका के रूप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दर सेठ के यहां चलीं तो पुण्यसार भी उनके पीछे हो लिया। आगे सेठ ने अपनी सातों पुत्रियों का विवाह उसके साथ करके बड़ा सुख माना।

विवाह के बाद पुण्यसार अपनी पत्नियों के साथ महल में गया परन्तु उसे चिन्ता थी कि कहीं वटवृक्ष उड़ कर वापिस न चला जावे। वह देह-चिन्ता की निवृत्ति-हेतु अपनी गुणसुन्दरी नामक पत्नी के साथ महल से नीचे आया और वहां एक दीवार पर इस प्रकार लिख दिया—

किहां गोपाचल किहां वलहि, किहां लम्बोदर देव।
आव्यो बेटो विहि वसहि, गयो सत्तवि परणेवि॥
गोपाचलपुरादागां, वल्लभ्यां नियतेर्वशात्।
परिणीय वधू: सप्त, पुनस्तत्र गतोस्म्यहम्॥

इसके बाद पुण्यसार वहां से चुपचाप चल कर उसी वटवृक्ष के कोटर में आ बैठा और देवियों के साथ उड़कर वापिस अपने स्थान में आ गया।

अगले दिन पुरन्दर सेठ पुत्र की तलाश करता हुआ उसी बड़ के पास आ पहुँचा और पुत्र को वस्त्रालंकारों से सुसज्जित देख कर परम प्रसन्न हुआ। सेठ अपने बेटे को घर ले गया और उसके लाए हुए गहनों को बेच कर रानी का हार प्राप्त कर लिया गया। अब पुण्यसार ने जुए का व्यसन त्याग दिया और वह पिता के साथ अपनी दूकान पर काम करने लगा।

इधर वल्लभी में जामाता के अचानक चले जाने के कारण सुन्दर सेठ के घर में बड़ी चिन्ता फैल गई और उसकी सातों पुत्रियाँ विरह में विलाप करने लगीं। गुण-सुन्दरी ने पुण्यसार द्वारा दीवार पर लिखे हुए लेख को पढ़ कर अपने पति का पता लगाने का निश्चय किया। वह पुरुषवेश धारण करके गुणसुन्दर व्यापारी के रूप में गोपा-चल आ पहुँची और वहाँ थोड़े ही समय में उसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

यहाँ गुणसुन्दर (युवक-व्यापारी) पर रत्नवती की नजर पड़ी तो वह उसके रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई और उसी के साथ विवाह करने का निश्चय किया। रत्नसार सेठ ने अपनी पुत्री के विवाह हेतु गुणसुन्दर को कहा परन्तु वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। फिर बहुत आग्रह किए जाने पर उसे रत्नवती का पाणि-ग्रहण करना ही पड़ा।

गुणसुन्दरी ने ६ मास की अवधि में अपने पति का पता लगा लेने का प्रण किया था। यह अवधि समाप्त होने पर उसने गोपाचल में अग्निप्रवेश करने का निश्चय किया। राजा ने उसे रोका और पुण्यसार को उसे समझाने के लिए भेजा। इस समय वार्तालाप में सारा भेद प्रकट हो गया और गुणसुन्दर ने नारी-वेश धारण कर लिया।

सुन्दर सेठ की पुत्री का विवाह गुणसुन्दर के साथ हुआ था, जो स्वयं एक नारी था। अब उसके पति की समस्या सामने आई तो स्वभावत: ही पुण्यसार उसका पति माना गया। अंत में गुणसुन्दरी की ६ बहनों को भी वल्लभी से गोपाचल बुलवा लिया गया और पुण्यसार अपनी आठों पत्नियों के साथ आनंद से रहने लगा।

पुण्यसार विषयक उपर्युक्त कथा के प्रमुख प्रसंग इस प्रकार के हैं, कि वे अन्य लोककथाओं में कुछ बदले हुए रूप में भी मिलते हैं। उनका सामान्य परिचय नीचे लिखे अनुसार हैं—

१ देवी अथवा देव की आराधना से संतानहीन व्यक्ति को पुत्र की प्राप्ति।

२ युवक तथा युवती का पाठशाला में एक साथ पढ़ना और उनमें परस्पर प्रेम अथवा विवाद का पैदा होना।

३ सेठ-पुत्र का विशिष्ट कन्या से विवाह के लिए हठ करना और उसकी इच्छापूर्ति होना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ धन खो देने के कारण सेठ-पुत्र का पिता द्वारा अपने घर से निकाला जाना ।

५ किसी वृक्ष के नीचे सोए हुए अथवा छिपे हुए कथानायक द्वारा देवों अथवा पक्षियों की बात-चीत सुनना तथा उससे लाभान्वित होना ।

६ उड़ने वाले वृक्ष पर बैठकर कथानायक का दूर देश में पहुँचना और वहाँ धन प्राप्त करना तथा विवाह करना ।

७ कथानायक का देववाणी से दूर-देश में विवाहित होना ।

८ वर द्वारा दीवार पर या वधू के वस्त्र पर कुछ लिख कर चुपचाप अज्ञात-दशा में चले जाना ।

९ वधू द्वारा पुरुष-वेश धारण करके अपने पति की तलास में निकलना और अंत में अपने पति का पता लगाने में सफल होना ।

१० पुरुष-वेश धारण करने वाली युवती का अन्य युवती से विवाह होना और अंत में उसके पति को उसका परिणीता पत्नी के रूप में प्राप्त होना ।

११ घर से निकले हुए युवक कथानायक का अंत में धन-सम्पन्न होना तथा उसे सुन्दरी पत्नी प्राप्त होना ।

महाकवि समयसुन्दरजी ने अपने काव्य के अंत में जैन-परम्परा के अनुसार कथानायक के पूर्वजन्म का वृत्तांत देकर उसे समाप्त किया है परन्तु उपर्युक्त प्रसंगों पर ध्यान देने से विदित होता है कि वे देश-विदेश की अनेक लोककथाओं में सहज ही देखे जा सकते हैं और कुल मिला कर एक रोचक लोककथा का ठाठ सामने खड़ा कर देते हैं ।

इस कथानक में वह पद्य पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करता है, जिसे वर एक दीवार पर अपने परिचय हेतु लिख कर चुपचाप चला जाता है । इसी प्रकार की अन्य लोककथा में यह पद्य अनेक रूपान्तरों में देखा जाता है । 'ठकुरै साह री बात' में पद्य का रूप इस प्रकार है –

सरसो पाटण सरस नय, सुसरै ठकुरो नांव ।
ईसर तूठै पाईये, आ गैहण ओ गांव ॥

उपर्युक्त कथावस्तु में पुरुषवेश धारण करने वाली नारी द्वारा दूसरी नारी के साथ विवाह करना भी आश्चर्यजनक घटना है । यह घटना अंग्रेज-कवि शेक्सपीयर विरचित 'बारहवीं रात' (Twelfth Night) नामक प्रसिद्ध नाटक के कथानक का सहज ही स्मरण करवा देती है, जिसमें समान रूप वाले भाई-बहिन घर से निकलते हैं और अंत में आश्चर्यजनक रूप से उनके प्रेम-विवाह सम्पन्न होते हैं । वहाँ बहिन पुरुषवेश में एक 'ड्यूक' की सेवा करती है, जो आगे जाकर उसका पति बनता है । इन दोनों कथानकों में विशेष समानता न होने पर भी पुरुषवेश-धारिणी नारी पर दूसरी नारी का मुग्ध होना और उसके साथ विवाह करने के लिए इच्छा करना तो स्पष्ट ही है । इतना ही नहीं, वह भ्रम में पड़ कर उसी के समान रूप वाले उसके भाई से विवाह भी कर लेती है, जिसके साथ उसका पूर्व-परिचय नहीं है । महाकवि शेक्सपीयर ने अपने नाटक का कथानक किसी लोककथा के आधार पर ही खड़ा किया है । इस प्रकार लोककथाओं की सार्वभौमिक समप्राणता सिद्ध होती है ।

महाकवि समयसुन्दरजी ने अपनी कथानक रचनाओं में स्थान-स्थान पर लोक-सुभाषितों का प्रयोग करके उनको सजाया है । इस क्रिया से उनकी रचना में सामर्थ्य का संचार हुआ और साथ ही अनेक लोक-सुभाषितों का सहज ही संरक्षण भी हो गया । राजस्थान के अन्य कवियों ने भी इसी प्रकार लोक-सुभाषितों का अपनी रचनाओं में बड़े चाव से प्रयोग किया है । 'बातों' में तो इनका प्रयोग और भी अधिक रुचि से हुआ है । इन लोक-सुभाषितों में कई प्राकृत-गाथाएं भी हैं, जो काफी लम्बे समय से चली आ रहीं थीं और थोड़ा-बहुत रूपान्तरित होकर लोकमुख पर अव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थित थीं। यही कारण है कि ऐसी गाथाओं को अनेक रूपों में प्रयुक्त देखा जाता है। आगे समयसुन्दरजी की रचनाओं में प्रयुक्त कुछ प्राकृत-गाथाओं के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ किं ताणं जम्मेण वि, जणणीए पसव दुक्ख जणएण।
पर उपयार मुणो विहु, न जाण हियय्यंमि विप्फुरई ॥१॥
दो पुरिसे धरउ धरा, अहवा दोहिं पि धारिया धरिणी।
उवयारे जस्स मई, उवयार जो नवि म्हुसई ॥२॥
लच्छी सहाव चला, तओ वि चवलं च जीवियं होई।
भावो तउ वि चवलो, उपयार विलंबणा कीस ॥३॥

२ दीसइ विविहं चरियं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण विसेसो।
अप्पाणं च कलिज्जइ, हिंडिज्जइ तेण पुहवीए ॥१॥
(प्रियमेलक चौपई)

३ गेहंपि तं मसाणं, जत्थ न दीसइ धूलि धूसरीया।
आवंति पडंति रडवडंति, दो तिन्नि डिभांइं ॥१॥
(पुण्यसार चरित्र चौपई)

आगे राजस्थानी भाषा के कुछ लोक प्रचलित सुभाषित द्रष्टव्य हैं—

१ घरि घोड़उ नइ पालउ जाइ,
घरि घोणउ नइ लूखउ खाइ।
घरि पलंग नइ धरती सोयइ,
तिण री बइरी जीवतइ नइ रोवइ ॥
(प्रियमेलक चौपई)

२ छट्ठी राते जे लिख्या, मत्थइ देइ हत्थ।
देव लिखावइ विहु लिखइ, कुण मेटिवा समत्थ ॥
(चंपक सेठ चौपई)

३ जसु घरि वहिल न दीसइ गाडउ,
जसु घरि भइंसि न रीकै पाडउ।
जसु घरि नारि न चूड़उ खलकइ,
तसु घरि दालिद बहरे लहकइ ॥

४ दोकड़ा वाल्हा रे दोकड़ा वाल्हा।
दोकड़े रोता रहइं छै काल्हा ॥
दोकड़े ताल मादल भला वाजइ।
दोकड़े जिणवर ना गुण गाजइ ॥
दोकड़े लाडी हाथ वे जोड़इ।
दोकड़ा पाखइ करड़का मोड़इ ॥
(धनदत्त श्रेष्ठि चौपई)

५ जासु कहीयै एक दुख, सो ले उठे इकवीस।
एक दुख बिच में गयो, मिले बीस बगसीस ॥
(पुण्यसार चरित्र चौपई)

ऊपर जो लोक प्रचलित सुभाषित प्रस्तुत किये गए हैं, वे जनसाधारण में कहावतों के समान काम में लाये जाते रहे हैं। कहावत के समान ही उक्तियों के द्वारा वक्ता अपने कथन को प्रमाण-पुष्ट बनाकर संतोष मानते हैं। साथ ही ध्यान रखना चाहिये कि महाकवि समयसुन्दरजी ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर राजस्थानी कहावतों का भी बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। आगे इस सम्बन्ध में कुछ चुने हुए उदाहरण दिये जाते हैं—

१ ऊखाणउ कहइ लोक, सहियां मोरी,
पेटइ को घालइ नहीं, अति वाल्ही छुरी रे लो।
(सीताराम चौपई, खण्ड ८, ढाल १)

२ जिण पूठइ दुस्मण फिरइ, गाफिल किम रहइ तेह रे,
सूतां री पाडा जिणइ, दृष्टांत कहइ महु एहरे।
(समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, पृ० ४३५)

३ उंघतइ विछाणउ लाधउ, आहींणइ बूझांणउ वे।
मुंग नइ चाउल मांहि, घी घणउ प्रीसाणउ वे ॥
(सीताराम चौपई, खण्ड १, ढाल ६)

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिक-तत्व प्रचुर परिमाण में प्रयुक्त हैं और यही कारण है कि उनकी रचनाओं को इतनी जनप्रियता प्राप्त हुई है। इस विषय पर विस्तार से विचार किया जाय तो कई रोचक तथ्य प्रकट होंगे। आशा है राजस्थानी-साहित्य के अध्येता इस दिशा में प्रयत्नशील होकर अपने परिश्रम का उपयोगी एवं मधुर फल साहित्य-जगत् को भेंट करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org